Naveen Shodh Sansar (An International Refereed / Peer Review Multidisciplinary Research Journal)
RNI No.- MPHIN/2013/60638, ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Scientific Journal Impact Factor (SJIF)- 8.054,
October to December 2024, E-Journal, Vol. I, Issue XLVIII, ISO 9001:2015 - E2024049304 (QMS)

काव्यमीमांसा में वर्णित कविचर्या की प्रासंगिकता

डॉ. रामेश्वर प्रसाद झारिया*

* सहायक प्राध्यापक (संस्कृत) शासकीय महाकोशल कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, जबलपुर (म.प्र.) भारत

शोध सारांश – राजशेखर द्वारा रचित काव्यमीमांसा यद्यपि अत्यन्त विस्तृत शास्त्रीय लक्षण ग्रंथ है किन्तु कविचर्या इस मायने में सर्वथा भिन्न है, क्योंकि इसमें न तो काव्य की आत्मतत्त्व की तरह गवेशणा है और न ही स्थापना बल्कि इन सारे सिद्धांतों के इतर कवियों के व्यक्तित्व परिवेश और दिनचर्या का विषद् विवेचन हुआ है। प्रस्तुत आलेख में उन्हीं बातों की पड़ताल करना है कि संस्कृत साहित्य के विकास क्रम में यायावरीय राजशेखर द्वारा स्थापित सैद्धांतिकी वर्तमान परिद्रष्य में कितनी और कहाँ तक प्रासंगिक है और दिलचस्प है।

प्रस्तावना – यायावरीय: संक्षिप्य मुनीनां मतविस्तरम् ।
व्याकरोत्काव्यमीमांसां कविभ्यो राजशेखर:।।

(काव्यमीमांसा अध्याय–प्रथम)

कवि, कविता और कवित्व शक्ति के सर्वप्रथम वैज्ञानिक निरूपण का श्रेय यायावरीय कवि राजशेखर को ही प्राप्त है। इन्होंने कवियों की काव्यविद्यास्नातक, हृदयकवि, अन्यापदेशी, सेविता, घटमान, महाकवि, कविराज, आवेशिका, अविच्छेदी, संक्रामयिता प्रभृति दश अवस्थाएँ कही है।[1] राजशेखर ने काव्यमीमांसा के कविरहस्य नामक अधिकरण में कविचर्या का जो चित्रण किया है, उसे परवर्ती आचार्यों ने भी आदर्श रूप में स्वीकारा है। क्योंकि यह कवियों के लिये आचार या सिद्धांत कोष है। काव्यमीमांसा के आधार पर यह कहा जा सकता है कि कवियों का अध्ययन क्षेत्र अत्यन्त व्यापक था। कवि होना कोई आसान काम नहीं था। राजशेखर का कवि ऋग्वेद के कवि की तरह ही अमूढ़ और प्रज्ञ प्रतीत होता है।[2]

राजशेखर के शब्दों में कवि वह है, जो प्रतिभा और व्युत्पत्ति से युक्त हो–

'प्रतिभाव्युत्पत्तिमांष्च कवि: कविरित्युच्यते।'

(काव्यमीमांसा अध्याय–पंचम्)

उनके मतानुसार काव्य विद्या के शिक्षार्थी द्वारा काव्योपयोगिनी विद्याओं और काव्य की उपविद्याओं का अच्छी तरह से अध्ययन हो जाने के पश्चात् ही काव्य–रचना की ओर प्रवृत्त होना चाहिए।[3]

व्याकरण, कोष, छन्द और अलंकार ये काव्योपयोगी मुख्य विद्याएँ हैं, चौंसठ कलाएँ काव्य की उपविद्याएँ हैं। इन विद्याओं और उप विद्याओं में निपुणता प्राप्त करने के अतिरिक्त कवियों के सत्संग, देश–विदेश के समाचार, विशिष्ट विद्वानों की सूक्तियों, लोक व्यवहार, विद्वद्गोष्ठी और प्राचीन कवियों के प्रबंधों का मनन करना इत्यादि आवश्यक था। उनकी मान्यता थी काव्य ज्ञान के लिये शास्त्र ज्ञान आवश्यक है। जिस प्रकार बिना दीपक के पदार्थों का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं किया जा सकता, उसी प्राकर शास्त्र ज्ञान के बिना काव्य ज्ञान असम्भव है–

'शास्त्रपूर्वकत्वात् काव्यानां पूर्वं शास्त्रेष्वभिनिविषत्।'

(काव्यमीमांसा अध्याय–द्वितीय)

आचार्य राजशेखर ने कविचर्या के अन्तर्गत कुशल कवि में जिन आठ गुणों का होना आवश्यक बतलाये हैं[4]– स्वास्थ्य, प्रतिभा, अभ्यास, भक्ति, विद्वत्कथा, बहुश्रुतता, स्मृति, दृढ़ता और उत्साह इत्यादि गुणों के अभाव में कवि के व्यक्तित्व का समुचित विकास संभव नहीं है।

एक अच्छे कवि के लिये उसके रहन–सहन एवं वातावरण का अच्छा होना आवश्यक है। राजशेखर का कथन है कि कवि को सर्वदा पवित्र रहना चाहिए। उनके अनुसार पवित्रता तीन प्रकार की है[5]–

1. वाणी की पवित्रता,
2. मानसिक पवित्रता,
3. शारीरिक पवित्रता।

वाणी की पवित्रता शास्त्रों द्वारा प्राप्त होती है, मन की पवित्रता योग से और शारीरिक पवित्रता के लिये हाथों और पैरों के नाखून हमेशा कटे रहना चाहिए। मुख में ताम्बूल हो, शरीर पर चंदनादि का लेप होना चाहिए। सदा स्वच्छ और उत्तम वस्त्रों को धारण करना चाहिए।

यायावरीय का अभिमत है कि कवि का काव्य पर उसके व्यक्तित्व की स्पष्ट छाप पड़ती है। यह प्रसिद्ध है कि चित्रकार अपने ही अनुरूप चित्र बनाता है।[6] राजशेखर अनुसार कवि की प्रतिभा या उसके मानसिक संस्कार पर उसके आचार–विचार का भी बहुत प्रभाव पड़ता है।[7] कवि को सदा मुस्कुराते हुए बातें करनी चाहिए, परन्तु वार्तालाप में गम्भीरता बरतनी चाहिए। रहस्य अन्वेषण में रूचि रखनी चाहिए। समय का सदुपयोग परदोश–दर्शन से परहेज और आग्रह करने पर समुचित आलोचना करनी चाहिए। कवि के आसपास के वातावरण के विषय में यायावरीय का कथन है कि कवि का भवन साफ सुथरा और लिपा पुता होना चाहिए। साथ ही कवि का प्रसाधन साफ सुथरा होना चाहिये। प्रत्येक ऋतु में कवि के बैठने के लिये पृथक–पृथक स्थान होना चाहिये। गृह वाटिका के वृक्षों की सुखद छाया में और लता कुंजों में बैठने के सुन्दर स्थान होना चाहिए। वाटिका विस्तृत और समुन्नत होनी चाहिए। जब कवि काव्य निर्माण करते–करते खिन्न चित्त वाला हो जावे तो उस समय एकान्त बना रहे और कवि जब शांत होकर मनोरंजन करना चाहे, तब उस

समय उसके परिजन व्यवधान न डालें।[8] उनका मानना है कि कवि का मित्र सभी भाषाओं में प्रवीण होना चाहिए। कवि का लिपिकार सभी भाषा में कुशल, शीघ्रवादी, सुन्दर अक्षरों को लिखने वाला, इशारे से समझने वाला, नाना लिपियों को जानने वाला, कवि तथा लाक्षणिक होना चाहिए।[9] उनके अनुसार कवि के पास स्लेट-पेन्सिल, सामान रखने का डिब्बा, कलम तथा स्याही, ताडपत्र या भुर्जपत्र, और लिपी पुती भित्तियायां सर्वदा रहना चाहिये। आचार्यों का कथन है ये समग्र पदार्थ काव्य विद्या के परिकर (सहायक) हैं पर राजशेखर का कथन है- **'प्रतिभैव परिकर' इति यायावरीय:।**[10] अर्थात् प्रतिभा ही परिकर है। आचार्य राजशेखर अनुसार पुरूषों के समान स्त्रियाँ भी कवि हो सकती हैं उनके विवरण से यह प्रतीत होता है कि वे स्त्री तथा पुरूष को समान दृष्टि से देखते थे। उनके विचार से संस्कार दोनों में समान होते हैं अत: उनके विकास का समान अवसर मिलना चाहिए-

'संस्कारो ह्यात्मनि समवैति, न स्त्रैणं पौरूषं वा विभागमभवेक्षते।'
(काव्यमीमांसा अध्याय-दशम्)

उनके समय में स्त्रियाँ कविता भी करती थीं, जिसका प्रत्यक्ष उदाहरण स्वत: उनकी पत्नी अवन्तिसुन्दरी थी। कर्पूरमंजरी में चेटी आदि दासियाँ भी अच्छी तरह कविता कर लेती थीं, जिसकी प्रशंसा स्वयं राजा चन्द्रपाल भी किया करते थे। कवि कर्म के लिये राजशेखर समय के सदुपयोग पर बल देते थे, क्योंकि समय का नियमित विभाग न करके किए जाने वाले कार्य विनष्ट हो जाते हैं। इसलिए दिन और रात को प्रहरों के हिसाब से चार-चार भागों में विभक्त कर लेना चाहिए।[11]

कवि को प्रात: काल उठना चाहिए। स्नान आदि दैनिक क्रिया के उपरान्त सरस्वती का पाठ करना चाहिए। तदनन्तर विद्याभवन में सुखपूर्वक बैठकर एक प्रहर तक काव्य की विद्या एवं उपविद्याओं का अनुशीलन करना चाहिए, क्योंकि प्रतिभा बढ़ाने के लिये अभ्यास जरूरी है।

कवि को इसके प्रहर में काव्य रचना का अभ्यास करनी चाहिए। भोजन उपरान्त काव्य गोष्ठी अर्थात् काव्य विषयक चर्चा करना चाहिए। तीसरे प्रहर की इस दिनचर्या में काव्य संबंधी विभिन्न विषयों का विवेचन करना चाहिए। चौथे प्रहर में एकाकी या सीमित अभिन्न मित्र मण्डली के साथ प्रात: काल की गई रचनाओं का पुनर्निरीक्षण करना चाहिए। गुण-दोष की विवेचना उपरान्त अव्यवस्थित पदों को सजाकर रखना और भूले या छूटे पदों का अनुसंधान करना चाहिए।

इसी प्रकार सायंकाल के प्रथम प्रहर में सायंकालीन संध्या वंदन और सरस्वती-स्त्रोत का परायण करना चाहिए। तत्पश्चात् दिन में लिखी हुई और परीक्षित काव्य रचना के प्रथम प्रहर के अन्त तक लिख कर पूर्ण कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् मानसिक श्रम निवृत्ति के लिये स्त्री-सहवास में मन बहलाने का कार्य करना चाहिए-

'यावदर्तिस्त्रियमभिमन्येत्।'(काव्यमीमांसा अध्याय-दशम्)

इस प्रसंग में श्री डी.सी. दलाल का यह विचार द्रष्टव्य है- Here the word 'आर्ति' denotes राग or इन्द्रियदौर्वल्य, Rajasekhara instructs Poets not to indulge in sexual excesses and advises them to have recourse to women only to remove their अर्ति or mental weakness similar usage can be found in the mahabhasya of Patanjali (1-1-1) where the word खेद is used instead of अर्ति' Cf.'खेदात् स्त्रीशु प्रवृत्तिर्भवति। समानष्च खेदविगमो गम्यायां चागम्यामांच।।'[12]

दूसरे और तीसरे प्रहर में भली - भाँति शयन करना चाहिए, क्योंकि अच्छी नींद स्वास्थ्य के लिए आवश्यक है। चौथे प्रहर में अवश्य उठना चाहिए, क्योंकि ब्रह्म मुहूर्त में मन निर्मल रहता है जिससे गूढ़ से गूढ़ तथा अलौकिक विषयों की भी प्रत्यक्ष अनुभूति करा देता है।

इस प्रकार उपर्युक्तानुसार जो कवि दिन-रात का विभाजन करके कविता की रचना करता है उसका काव्य विद्धानों के कण्ठ में सुशोभित होता है। यायावरीय ने कविचर्या के अन्तर्गत कवि के द्धारा आलस्य करने पर पांच विपत्तियों का उल्लेख किया है[13] - (1) दरिद्रता[14](2) दुर्व्यसनों में आसक्ति (3) काव्य क्रिया का तिरस्कार (4) दुर्भाग्य (5) दुष्टों और शत्रुओं पर विश्वास। उनका मानना है कि काव्य रचना के समय, उसका संस्कार करते समय ही पूर्ण करना चाहिए, उसे बाद के लिए नहीं छोड़ना चाहिए। कवि को लोक निन्दा के भय से ग्रसित नहीं होना चाहिए, उसे अपने को और अपनी वस्तु को स्वयं यथार्थ रूप से समझना चाहिए, क्योंकि जनता तो कुछ भी कहती रहती है, उसके जवान में लगाम नहीं रहती और अच्छी से अच्छी वस्तु की भी कुछ लोग निन्दा करते रहते हैं। लोक में प्रत्यक्ष कवि की कविता, कुलस्त्रियों का रूप और घरेलू वैद्य की चिकित्सा- ये तीन बातें किसी-किसी को अच्छी लगती है, इस संदर्भ में राजशेखर का स्पष्ट कहना है-

प्रत्यक्ष कवि काव्यं च रूपं च कुल योषित:।
ग्रहवैद्यस्य विद्याचकस्मैचिद्यदि रोचते।।
(काव्यमीमांसा अध्याय-दशम्)

इस तरह कहा जा सकता है कि कवि को सर्वदा लोक निन्दा के भय से अपनी स्वतंत्र भावना तथा यथोचित बातों को व्यक्त करने से विरत नहीं होना चाहिए।

यायावरीय ने कविचर्या के अन्तर्गत विस्तृत जानकारी प्रदान किये हैं जो सम्पूर्ण मानव समाज के लिये प्रेरणा स्रोत है। यथा- भवन लिपा पुता होना चाहिए, गाय के गोबर से लिपा और चूना से पुता भवन कीटाणु से मुक्त होते हैं। इसी प्रकार स्वच्छता पर विशेष बल दिया है। बालभारत में राजशेखर ने कहा है-

'संस्कार सौचयेन परं पुनीते।' (बालभारत 1/9)

निष्कर्षत: आचार्य राजशेखर के काव्यमीमांसा में वर्णित कविचर्या का जब हम सूक्ष्मता से विचार करते है तो यह स्पष्ट होता है कि जिज्ञासु शिष्यों के लिये काव्य निर्माण-ज्ञान के असंख्य द्धारों के उद्धाटनकर्ता तथा अपने ही मौलिक विषयों के आलोक से स्वत: आलोकित है। यह तो स्वयंसिद्ध है कि काव्य जैसी मानवीय मूल्यों से सुसज्जित सृजन के लिए कवि को मनसा, वाचा और कर्मणा से पवित्र, उन्नत और संवेदनशील होना ही चाहिए। तभी कवि का विचार मानव समाज के लिए हितकर हो सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. दश च कवेरवस्था भवन्ति....। तद्यथा काव्यविद्यास्नातको, हृदयकवि:, अन्यापदेशी, सेविता, घटमान:, महाकवि कविराज, आवेशिक:, अवेच्छेदी संक्रामयिता च काव्यमीमांसा। (काव्यमीमांसा अध्याय-पंचम)
2. अमूर: कविरदितिर्विवस्वान्त्युसंसन्मित्रो अतिथि: शिवो: न:।
ऋग्वेद- 7 मंडल 9 सूक्त 3 मंत्र (7-9-3)
3. गृहीत विद्योपविद्य: काव्य क्रियायै प्रयतेत्।
काव्यमीमांसा-अध्याय-दशम्-राजशेखर

4. स्वास्थ्यं प्रतिभाभ्यासो भक्तिर्विद्धत्कथा बहुश्रुतता।
स्मृतिदार्ढ्यमनिर्वेदश्च भ्रातरोऽष्टौ कवित्वस्य।।
काव्यमीमांसा अध्याय दशम्।
5. वही– 'शुचिशीलं हि सरस्वत्या: संवहनमामनन्ति।'
6. काव्यमीमांसा अध्याय दशम्– 'यादृशाकारश्चित्र कारस्तादृशाकारमस्य चित्रमिति प्रयोगवाद:।'
7. वही– 'नह्येवंविधमन्यत्प्रतिभा हेतुर्यथा प्रत्यग्रसंस्कार:।'
8. वही– दशम् अध्याय
9. वही– दशम् अध्याय
10. वही– दशम् अध्याय
11. वही– दशम् अध्याय
12. राजशेखर और उसका युग–उद्धृत पृष्ठ– 247 पाण्डेय रामेश्वर प्रसाद शर्मा
13. काव्यमीमांसा अध्याय–दशम्
14. देशं कालं च विभ्रजमान: कविर्नार्थदर्शनदिशि दरिद्राति।
(काव्यमीमांसा अध्याय सप्तदशम्)

****